स्त्री प्रश्न और स्त्री संबंध कानून प्रावधान :→

स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय महिला कि स्थिति में काफी सुधारात्मक परिवर्तन हुवे आजादी के 75 वर्षो के पश्चात हम यदी कानून दृष्टिकोन से नारी के प्रती अपराधों को रोकने के लिए बनाये गये अधिनियमों की विवेचना करे है तो स्पष्ट परिलक्षित होता है कि हमारी देश में नारी कि गरीमामयी स्थीति को बनाये रखने के लिए बहुत सारे कानून बनाये गये है किन्तु पर्याप्त कानूनी शिक्षा के अभाव में कानून की जानकारी उनको नहीं मिल पाती और अधिकतर महिलाओं को पता ही नहीं होता कि उनको कौन - कौन से अधिकार प्राप्त हैं।

प्राचीन युग से वर्तमान या आधुनिक युग तक नारी की संघर्ष की गाथा बहुत लंबी है कहा जाता है कि एक हजार वर्षो से पराधीनता में रहनेवाली एक मात्र जाती नारी ही है। इसी कारण स्त्री को अंतिम उपनिवेश की भी सज्ञा दी जाती है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद स्त्री और पुरुष को समान दर्जा देता है किन्तु आँकड़ों से स्पष्ट है कि यह स्थिति कागजों तक ही सीमित है यादि हमारे देश में घटित होनेवाले महिलाओं के प्रति अपराधों का विश्लेषण करे तो स्पष्ट होता है कि प्रति 6 मिनिट पर महिलाओं के साथ छेड़छाड़ सार्वजनिक अपमान, हत्या का प्रयास बलात्कार, उत्पीड़न और अश्लीलता जैसी घटनाएँ घटती है।

एक ऐसे समाज की कल्पना करके जो न्यायोजित समाज हो जिसमें लिंग पर आधारीत भेद-भाव न हो संविधान ने सामाजिक, आर्थिक, और राजनैतिक न्याय सभी के लिए सुनिश्चित करने कि बात की है यही नहीं उसने सब के लिए प्रतिष्ठा और अवसर की समानता तथा व्यक्ति की गरीमा सुनिश्चित करने की बात कि है। इन उद्देश्यों को चरितार्थ करने के लिए संविधान ने प्रावधान किए गए है.

14 विधि के समक्ष समता अथवा विधियों के समान (संरक्षण का अधिकार) अनुच्छेद 14 यह उपबंधी करता है कि भारत राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से न रहना और विधि 15 में महिलाओं के खिलाफ अपराधों के लिए सुजा बलात्कार मानव जाती के खिलाफ सबसे जगन्य अपराधों में से एक है.

स्त्री विमर्श और नारीवाद भारतीय समाज में स्त्री की बदलती स्थिति

भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में अपनी जातीय अस्मिता कि पहचान और जनता के अधिकारों के माँग के साथ-साथ स्त्री मुक्ति का स्वप्न भी देखा जा रहा था। तब स्वतंत्र भारतीय राष्ट्र ने महिला आंदलनों को यह विश्वास भी दिलाया था कि बड़े उद्देश्यों की प्राप्ती के पश्चात स्त्री-पुरुष संबंध, नैतिक श्रम विभाजन आर्थिक हिंसा जैसे मुद्दे स्वतः ही हल होजाएँगे परन्तु स्वतंत्रता के इतने वर्षो के बाद भी 'स्त्री' मूलक प्रश्न ज्यों के त्यों बने हुवे हैं। औरत पर आर्थिक, सामाजिक, यौन उपीड़न अपेक्षतयाँ अधिक गहरे, व्यापक, निरंकुश और संघटित रूप से कायम है। स्त्री आंदलनों को इन समस्त चुनोतियों से लड़कर ही अपनी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करना होगा।

निश्चित रूप से इसका स्वरूप अन्य मुक्तिकामी आंदलनों से किसी रूप में भिन्न नही है जो वर्गीय, जातीय, नस्लीय आधार पर समाज में हो रही हिंसा असमानता के प्रति संघर्षरत है, तथा एक समानता मूलक समाज निर्माण हेतु प्रतिबद्ध है। स्त्रीवादी आंदलनों की शैक्षणिक रणनीति के रूप में स्त्री अध्ययन एक अकादमीक अभी प्रयास है जो मानवता एवं जेंडर संवेदनशील समाज में विश्वास करता है, यह समाज के प्रत्येक तबके के अनुभवों को केंद्र में रखकर ज्ञान के प्रति नया दृष्टिकोन विकासित करने के लिए प्रतिबद्ध है जो सत्ता मूलक ज्ञान की रूढ़ सीमाओं को तोड़कर उसके वहद रूप में प्रस्तुत करता है विशेष तौर पर स्त्री विषयक मुद्दों के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, एवं सांस्कृतिक पक्षों पर अपनी राय रखते हुवे जेंडर समाज का आधारित समाज के निर्माण कि ओर अग्रसर है।

अन्तर विषयक अध्ययन होने के कारण यह अन्य विषयों के साथ ज्ञानात्मक संबंध भी कायम करता है स्त्री प्रश्नों के प्रति अकादमीक संबंध भी कायम करता है। समाज में स्पेस बनाने के लिए भी स्त्रीवादी को पढ़ाया जाना अती आवश्यक है जरूरी नहीं कि उच्च शिक्षा संस्तानों में स्त्रीवाद बने ही परन्तु यह संभव हो सकेगा की ज्ञान के नये क्षीतिय के रूप मे वह उसके बारे में समझ सकते हैं।

आम तौर पर स्त्री विमर्श के अकादमीक होने के उपरांत यह आरोप लगते रहे है कि इसके कारण आंदलनों का स्वानिकरण वर्जीनीय बुल्फ ने कहा है कि स्त्री का लेखन होता है स्त्रीवादी होने से बच नहीं सकता। अपने सर्वत्तिम मे यह स्त्रीवादी ही होगा। इस अर्थ में हिन्दी का स्त्रीवादी साहित्य स्त्री को व्यवस्ता की गुलामी से मुक्त करके उसे एक आत्मनिर्णायिक स्वतंत्र व्यक्ति की अस्मीता के रूप में स्थापित करने का महत्वपूर्ण और सार्थक प्रयास है।

अंत में कहा जा सकता है कि आज के स्त्री विमर्श साहित्य संस्कृति की व्यापकता से महिला रचनाकार में अपनी रचनाओं के माध्यम से स्त्री जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हो रहे शोषण एवं अत्याचार के विरुद्ध क्रांतिकारी कदम उठाऐ। परंपरा और रुढ़ियों से वह अपने दामन छुड़ाना चाहती है कुछ वर्जनांओं की दीवारों से बाहर निकलकर अभिव्यक्त करना चाहती है।

आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' :→ प्रभाखेतान

आत्मकथाएँ पीड़ित समुदायों के लिए अपनी पीड़ाओं को आत्मानुभूतियों को अभिव्यक्त करने का सबसे सरल व प्रथम माध्यम है क्योंकि इन अभिव्यक्तियों द्वारा समाज में उनकी हैसीयत को एक भुक्त भोगी की निगाह से जाना जा सकता है लेकिन यह विडंबना ही है कि हिन्दी साहित्य में महिलाओं द्वारा एक सदृढ़ परंपरा पहले से मौजूद है। सबसे पहले बंगला आत्मकथा की तो शुरूआत ही एक महिला 'रास सुंदरीदेवी' कि सन् (1873) में लिखी आमार जीबोन' शीर्षक आत्मकथा से होती है इसी प्रकार मराठी में भी बहुतायत में महिलाओं की आत्मकथा मिलती है, पर हिन्दी में स्थिति की इसके उल्टा है इसका आरंभ हिन्दी में बहुत देर से हुआ → 1990 दशक के बाद स्त्री आत्मकथा लेखन में तेजी आई।
स्त्री लेखिकाओं ने बेबाकि से अपने जीवन में घटित घटनाओं का आधार बनाकर अपना जीवन वृतांत लिखा, दरअसल यह दशक स्त्री मुक्ति संघर्ष से जुड़कर हिन्दी साहित्य में "स्त्री विमर्श" की बुनियाद पर साहित्यिक रचनाओं के सृजन से जुड़ा है। फलस्वरूप आत्मकथा लेखन में भी स्त्री लेखिकाओं ने दिलचस्पि दिखाई।

जीवन में विद्रोही चेतना का आरंभ अपने हाशीये पर होने के एहसास से शुरू होता है यह हाशीया प्रभाखेतानी की आत्मकथा अन्यासे अनन्या में उत्पीड़न की कई तहों के रूप में नजर आता है और यही उत्पीड़न या हाशीयाकरण प्रभाखेतानी के चेतना के निर्माण पहचान व संघर्ष का आधार बनता है। स्त्री होना और वह भी सावली स्त्री होना, भारतीय समाज में उपेक्षा के बहुत आम कारण है। यह ऐसे कारण है, जिन्होंने सब कुछ

होते हुवे भी प्रभाखेतान के बचपन को अनाथ बना दिया "अम्मा द्वारा कभी गोद में न लेना," ममत्व के लंबे इंतजार में ममत्व के दरवाजे के बाहर घंटों इंतजार ने प्रभाखेतान और उनकी माँ में हमेशा एक शाश्वत दूरी बनाये रखी। अनाथ बचपन और ममत के इस अभाव से उपजे अकेले पन ने प्रभाखेतान को जीवन का अर्थ भी दिया। ऐसा अर्थ जिसने सिर्फ मैने अपने आपको बचाया हैं अपने मूल्यों को जीवन में संजोया बल्कि दुनिया के पैरों तले रौंदे जाने के बावजूद जिंदगी को झेला नहीं बल्कि हस्ते हुवे जिया। ऐसी उपेक्षाओं के बीच से ही अपने अस्तीत्व को गढ़ा। एक ऐसा अस्तित्व जिसमें एक सफल उदयमी इस दोहरे संघर्ष के बीच निजी पिड़ाएँ पिता की मृत्यु है।

सगे संबंधीयों द्वारा यौन उत्पीड़ित भी और मारवाड़ी समाज के पुरातन पंथी नियम भी जीवन के ए हासिए थे। जिनकी भया वहता से वे कभी मुक्त नहीं हो पाई। अतीत की यह दहशत सदैव उनकी स्मृतियों में जमी रही। इसके साथ ही बंगाली समाज में अपने अल्पसंख्या होने के दंश को भी प्रभाखेतान ने झेला था। प्रेसिडेंन्सी कालेज में बंगाली दोस्तो द्वारा लगातार 'शोषक और लूटेरे होने की अनुभूति करायी गयी जिसने प्रभाखेतान के मन मस्तीष्क को पूरी तरह हिलाकर रख दिया। वे अपनी मारवाड़ी पहचान को रगड़ - रगड़ कर मिटाने लगी थी। पर पेन्सील से खिंचि गई लकीरों अक्षरो एवं तस्वीरों को ठीक से मिटाना संभव नहीं था। इसलिए क्लास के बंगाली माहोल में वे अकेली पड़ती गई और अपनी मारवाड़ी पहचान को झेलने में असमर्थ होती गयी इन्हीं असमर्थता को उपेक्षाओं ने और दहशत के बीच डॉ सम्यक की बाहों

मे पहली बार अपने को सुरक्षित महसूस किया अपने को सुंदर महसूस किया। अभावों के कारण संसार में पहली बार प्रेम को अपनत्व को जाना। चुनाव और निर्णय की स्वतंत्रता का पहला अहसास हुआ। चुनाव और निर्णय की जो कि तो होते ही हैं। पर बीना जोकिम के स्वतंत्रता का वर्ण भी नहीं किया जा सकता उपेक्षाओं का प्रताड़नाओं के संसार से बाहर कदम रखने के लिए जोकिम को उठाना ही पड़ेगा। इसलिए तय किया कि गलत-सही जो भी हो वहाँ से वापस मुड़ना संभव नहीं। इस विद्रोही रास्ते पर चलते हुवे प्रभाखेतान विवाह नाम का संस्ता को भी एक ओवरेटेड संस्था मानती है और उसे डॉ॰ सर्राफ और अपने बीच तरहीज देने से इनकार करती है। यह अलग बात है कि डॉ सर्राफ के साथ संबंध समाज में उन्हें हमेशा दूसरी औरत को रुप में ही मान्यता देता है। इनकी औरत की आर्थिक आत्मनिर्भरता भी समाज के भीत उसकी सामाजिक हैसीयत को बदल नहीं पाती क्योंकि औरत अवदान के नकारने की परंपरा रही है पहले गृहस्थी में उसके श्रम को नकारा जाता है। फिर मुख्य धारा में यदि उसे स्थान दिया जाता है। तब उस स्त्री को अपवाद मानकर कर्तव्य की समझ लेता है या फिर उसे पर धकेल देता है। आनेवाले वक्त में औरत की सबसे बड़ी लड़ाई इस मुख्य रहने की होगी। "प्रभाखेतान भी जीवन भर इस मुख्य धारा के लिए लड़ती रही। विडंबना है कि आर्थिक क्षेत्र में तो वे मुख्य धारा में आ गई पर सामाजिक जीवन में 'पितृ सत्ता की जकड़ इतनी मजबूत थी कि वे वह बहिष्कृत ही रही।

D) शोषण :→

शोषण इन्हीं सामाजिक व पारीवारीक यातनाओं व उपेक्षाओं के संसार में प्रभाखेतान ने पितृ सत्ता की संरचना व राजनीति को संझा। अपने औरत होने की गुलामी को संझा और चटर्जी से जाना स्त्री होना कोई अपराध नहीं है पर नारित्व की आँसू भरी नीयती स्वीकार करना बहुत बड़ा अपराध है।

10/09/2023

'वह सपनों है जीवन और'

"कात्यायनी"

जन्म - 7 मई 1959
शिक्षा - एम. ए. एम. फिल. (हिन्दी)
विगत 24 वर्षों से विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में राजनीतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक विषयों पर स्वतंत्र लेखन, लगभग सात वर्षों तक 'नवभारत टाइम्स' और 'स्वतंत्र भरत' की संवाददाता के रूप में भी काम किया। संप्रति: स्वतंत्र लेखन।

कविताएँ हिन्दी की अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। कुछ कविताएँ अंग्रेजी, पंजाबी, मराठी, गुजराती में अनुदित-प्रकाशित। आधा दर्जन कहानियाँ प्रकाशित।

चेहरों पर आँच, सात भाइयों के बीच चम्पा, इस पौरुषपूर्ण समय में, जादू नहीं कविता, फुटपाथ पर कुर्सी, राख अँधेरे की बारिश में (सभी कविता संकलन)

दुर्ग द्वारा पर दस्तक (स्त्री-प्रश्न विषयक निबन्धों का संकलन)

षड्यंत्ररत मृतात्माओं के बीच (साम्प्रदायिक, फासीवाद, बुद्धिजीवी प्रश्न और साहित्य की सामाजिक भूमिका पर केन्द्रित निबन्धों का संकलन).

कुछ जीवन्त, कुछ ज्वलन्त (समाज, संस्कृति और साहित्य पर केन्द्रित निबन्धों का संकलन), प्रेम, परम्परा और विद्रोह (शोधपरक निबन्ध) प्रकाशित।

Scanned with OKEN Scanner

समकालीन भारतीय स्त्री कवियों के पेंगुइन द्वारा प्रकाशित संकलन 'इन देयर ओन वॉयस' में कविताएँ शामिल।

क्रान्तिकारी वामपंथी राजनीति से अनुप्रमाणित सामाजिक सक्रियता, सांस्कृतिक मोर्चे व नारी मोर्चे के साथ साथ मजदूर मोर्चे पर भी सक्रिया।

01/09/2023

(लेखिका) ममता कालीया का → दौड़ (लघु उपन्यास)

आज भूमंडलीकरण का जमाना है, आज चारो तरफ हमें तथा बाजारवाद को देख सकते है आज के समय का युवावर्ग बड़ी तेजी से बाजार प्रबंधन तथा व्यापार प्रबंधन की ओर आकर्षित हो रहा है, उन्हें अब डॉक्टर या इंजीनियर नहीं बनना है बल्की वह अब बड़ी-सी कंपनी के मैनेजर CEO बनना ज्यादा पसंद करते है, अपने कैरियर की दृष्टि से सबल होने के लिए यही रास्ता सबसे आसान समझते है, एक समय था कि बाजार इतना महत्वपूर्ण नहीं था, सामान बेचना और खरीदना इससे ज्यादा बाजार की पहचान नहीं थी, लेकिन अब बाजार बहुत बड़ा हो चुका है तथा यह अनेक लोगों की जीविका का महत्वपूर्ण स्थान बन चुका है, यह वह स्थान है जहाँ सब-कुछ बिकाऊ है। शायद मनुष्य का मनुष्य

महानगरीय मानसिकता का चित्रण
बुद्दा - बुद्दी नगर

से संबंध भी तभी बाजार जितना बड़ा होता जा रहा है, मानवीय मौल्या उतने ही छोटे होते जा रहे हैं, समाज पर इसका बहुत गेहरा प्रभाव पड़ रहा है, जिसे स्पष्ट देखा जा सकता है इसी प्रभाव को व्यक्त करती ममताकालीया का उपन्यास 'दौड़' आज के युग का सबसे सम-सामाइक उपन्यास है। ममताकालीया के उपन्यास में आधुनिक भारतीय, समाज तथा भारतीय जीवनशैली में व्यवसाय के बड़ते क्रम तथा प्रभाव को दर्शाती कथा है।

1) पवन 2) पांण्डे, 3) सघन 4) राकेश 5) रेखा 6) स्टेला, जैसे लोग आज व्यवसाय जगत की परि-स्थितीयों के गिरकर यथास्थितीवादी बनकर रह गये है सभी यह जानते है कि इस तेज दौड़ती जींदगी में किसी एक जगह बैठ रहकर अपना भविश्य और जीवन को सुखी-संपन्न बनाना संभव नहीं है फिर भी इन चिजों के लिए मानवीय संबधो में जिस तेजी से बदलाव आया है और रिस्तों से अधिक महत्व कैरियर को गया है इससे यही साबीत होता है की आज के आधुनिक जीवन में वास्तव में कैरियर और ऐशो अराम की जींदगी ही सब कुछ है नई पिढी के लिए, बाकी सब कुछ गौण है।

इस उपन्यास में पवन के सामंतशाही सोच और अपने माँ-बाप के साथ किए गये महाजनी बर्ताव से उसकी माँ रेखा पिताजी राकेश बहुत ही आहत होते है। इतना ही नहीं ममता कालिया ने उपन्यास में कुछ गौण पात्रों के जरिए ऐसे प्रसंगो का वर्णन किया है जिस में आहत होते माता-पिता के विवशता झलकती है कालिया ने अपने उपन्यास के बारे में स्वयं लिखती है →

'भूमंडलीकरण और उत्तरऔद्योगिक समाज में 21वीं सदी में युवा वर्ग के सामने एक नये ढंग के रोजगार और नौकरी के रास्ते खोल दिये हैं। एक समय था जब हर विद्यार्थी का एक ही सपना था पढ़-लिखकर प्रशासनिक सेवा में चुना जाना। इनके अंतर्गत डॉक्टर की बेटी, इंजिनियरिंग की बेटी इंजिनियरिंग तब बाजार इतना आकर्षक विशाल और व्यापक नहीं हुआ था कि युवा वर्ग इसे अपने सपनों में शामिल करे। तब बाजार का मतलब था एक ऐसी जगह जहाँ हम अपनी जरूरतें पूरी करते थे और थक-कर घर लौट आते थे। उस वक्त का बाजार इतना चमत्कार और चटकीला नहीं था की आप वहाँ अपनी पूरी जेब खाली कर आते थे--- आर्थिक उदारिकरण ने भारतीय बाजार को शक्तिशाली बनाया इसने बाजार प्रबंध की शिक्षा के द्वार खोले और छात्र वर्ग को व्यापार प्रबंध में विशेषता हासिल करने के अवसर दिये। बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने रोजगार के कई अवसर प्रदान किये युवा वर्ग ने पूरी लगन के साथ इसी सिम-सिम द्वार को खोला और इसमें प्रविष्ट हो गया।

वर्तमान सदी में समस्त अन्यवाद के साथ एक नयावाद आरंभ हो गया वो है बाजारवाद और उपभोगतावाद। इसके अंतर्गत 20वीं सदी का सिदा-सादा खरिददार एक चतुर उपभोगता बन गया। जिन युवा-प्रतिभावों ने यह कमान संभाली, उन्होंने कार्य क्षेत्र में तो खूब कामयाबी पाई पर मानवीय संबंधों के समीकरण उनसे कहीं ज्यादा खिंच गये तो कहीं ढील पड़ गये। दौड़ इन प्रभावों और तनावों की पहचान कराता है। व्यवसाई नया से आजीविका वाद (केरेरिजम) पैदा होता है और यह आजीवीका वाद पारिवारिक

प्रयाग -> इलाहाबाद (त्रिवेणी संगम)

संबंधो की भावनात्मकता आदी को नष्ट प्राय कर देता है

इसमें ममता कालिया ने पवन, शरद, अभिषेक जैसे पात्रों के द्वारा बाजार तथा मार्केटिंग नितियों का परिचय दिया है।

उपन्यास के प्रारंभिक अध्यायों में सभी के कंपनियों के प्रोडक्स तथा उन्हे बेचने की चुनौतियो तथा अन्य व्यवसाय जगत की समस्याओं का चित्रण किया है मानवीय संबंधो के एवं खिंचावों को पवन, सगन, तथा स्टेला के जरिये उन्होंने बखुभी चित्रण किया है, जब पवन अपने माँ-बाप को मिलने जाता है तो वे लोग उसे इलाहाबाद के आस-पास Job ढूंढने के लिए कहते है उन्हे आशा थी कि इस तरह अपने बेटे कि करियर में रुकावट नहीं बनेंगे; पवन भी उनके साथ पवन की सोच और दृष्टीकोण कुछ अलग ही रहते है वे वह अपने पिता के पास कलकत्ते जा कर बसने के सलाह पर कहता है कि -> "पापा मेरे लिए शहर महत्वपूर्ण नहीं है करियर है आप कलकत्ते को ही लिजिए कहने को महानगर है पर मार्केटिंग की दृष्टी से एक दम लद्धड है। कलकत्ते में प्राड्युसर्स का मार्केट है कंजुमरर्स का नहीं मैं ऐसे शहर मे रहना चाहता हूँ जहाँ लेक्चर और कलक्चर हो या न हो कन्जूमर को होना जरुरी है। मुझे संस्कृती नहीं उपभव का संस्कृता चाहिए तभी तो मैं कामीयाब रहूँगा. इन बातों से माता-पिता संधिग्ध हो गये, उसके आदर्श से ज्यादा यथार्थ कि ओर झुका था, इतना ही नहीं जितने भी दिन वह घर पर रहता है उतने दिन उसका व्यवहार अपने माता-पिता विशेषना अपनी माँ से

यहाँ तक कि धोबी से धुली होकर आए कपड़ो के लिए

विशेष: पवन ज्यादा पैसे दे देता है तो उसकी माँ उसे समझाती है कि यदी वह टूरिस्ट की तरह पैसा देता रहेगा तो ये लोग और चढ़ जायेंगे। लेकिन पवन इस बात पर हंगामा खड़ा कर देता है। अपने दफ्तर में मिल रही इज्जत का हवाला देखकर माँ को ताने दे पड़ता साथ ही साथ उसके जन्म दिन पर ग्रिटिंग कार्ड नहीं भेजा जिससे आफिज के लोग उसका मजाक उड़ाते है पवन इस बात से भी उखड़ा हुआ था अब उसके कोई भी दोस्त शहर में नहीं रहे करियर के लिए बाहर

वह स्वयं यतार्थ वादी है परंतु उसी के जैसे व्यवहार दूसर से मिले ये उसे मंजूर नहीं अपने पिता से भी वह बिना बात के बहस करता है उसके पिता के विचार उससे मेल नहीं खाते। धर्म, अध्यात्मीक, दर्शन, अर्थशास्त्र जैसी बातों पर उसके पिता के विचार अलग अलग होते उसके पिता जहाँ नई-पुरानी चीजों और व्यवसाया की तुलना करते हुए पूराने के समर्थन में बोलने लगते है तो पवन उसे नकार देता था।

पवन अपने विचारों से न केवल माता-पीता को आहत करता है बल्की उसके जीवन साथी के चयन तथा उसके साथ वैवाहिक जीवन के एक अजीब तरीके से भी वह उन्हे दुःख पहूँचाता है।

पवन स्टेला से अहमदाबाद में मिला था। तब से दोनों के संबध घने होने लगते है जब रेखा और रकेश को इसका पता चलता है तो रेखा को स्टेला बिलकुल पसंद नहीं आती। इतना ही नहीं जब स्टेला के लिए दिए गए उपहार को भी अस्विकार कर देती है तो पवन कहने लगता है कि → वह

बहुत महंगा उपहार था जो अब व्यर्थ जा रहा है। पवन और स्टेला दोनों विवाह के बंधन में बंध जाते है रेखा और राकेश दोनों पवन को समझा -ते है कि शादी के बाद साथ
फिर पवन फिर से अपने आधुनिक यथार्थवादी विचार उनके सामने यह कहकर रखता है कि पपा आप भारी भरकम शब्दों से हमारा रिश्ता बोझील बना रहे है मैं अपना करियर, अपनी आजादी कभी नहीं छोड़ुंगा। स्टेला चाहे तो अपना बिजनेस चैनेज ले चले पवन को पत्नी से ज्यादा बिजनेस की ही पड़ी थी। रेखा और राकेश को यह अजिब सा लगता है की उनका दांपत्य जीवन सेटलाइट और इंटरनेट के जरीए चलेगा। वे जिस गली मे रहते थे उसे बुडा-बुढ़ी गली कहते थे क्योंकि सभी के घरों के चिराग अपने माँ-बाप को छोड़कर करियर बनाने के लिए दूसरे शहरों विदेशों मे चले जाते है रह जाते है सिर्फ बुड़े माँ-बाप, एक कार, एक कुत्ता और उनके बच्चों द्वारा महंगी चिजे। रेखा को भी पवन मैक्रोवेव और P.C.D दे जाता है रेखा को इन चिजो की कोई जरुरत नहीं थी। पवन का छोटा भाई भी काम के सिलसिले मे बाहर चला जाता है। दोनो बच्चों के चले जाने पर उनका काम नहीं रह पाया की उस किसी में रहकर अपना समय काट लेती। इस उपन्यास से पता चलता है कि इस उपन्यास मे ममता कालीया ने औद्योगिक या आधुनिक समाज तथा भारतीय जीवन शैली मे व्यवसाय जगत के बढ़ते प्रभाव तथा तनाव को दर्शाती कथा है। ऐसा आराम जींदगी के भितर भी मनुष्य अपने आप 4 तरफ दौड़ रहा है,

वैश्विक संदर्भ में आज बाजार बहुत बड़ा हो चुका है। इसके तहत मनुष्य अपनी पहचान के साथ बचाने के पीछे या सजाते-सजाते मानवीय मुल्यों को ही पीछे छोड़ते जा रहा है।

इकाई - II

हिंदी का नाटक साहित्य और रंगमंच स्त्री लेखन :—

साहित्य मानव के सम्पूर्ण जीवन से सम्बन्धित है। समाज के उत्थान और पतन में साहित्य का योगदान होता है। समाज की वैविध्यपूर्ण सामाजिक परिस्थितियों का साहित्य में अंकन किया जाता है। साहित्य समाज, देश तथा संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है "साहित्य समाज का दर्पण है। जब वह युगीन यथार्थ को प्रतिबिंबित करता है तो उसका लक्ष्य दोहरा होता है। एक युगीन विकृतियों, विसंगतियों और रुग्णताओं को विषय बनाकर उनके निवारण हेतु समाधान खोजना, दूसरा अपने अनुभव सत्य से गुजरकर बेहतर भविष्य के निर्माण हेतु भावी पीढ़ी को दिशा-निर्देश करना" साहित्य का सृजन समाज के कल्याण हेतु किया जाता है। वह समाज का मार्गदर्शन करता है तथा साथ ही साहित्य वर्तमान एवं भविष्य को परिवर्तित करने की शक्ति रखता है। साहित्य में स्त्री सदैव से केन्द्र बिन्दु रही है।

साहित्य की अन्य विधाओं कहानी उपन्यास, कविता, निबन्ध आदि के भाँति ही नाट्य - विधा में भी स्त्री - जीवन के विविध पहलुओं पर लेखनी चलाई गयी है, हिंदी नाटककारों ने स्त्री जीवन के प्रत्यक क्षेत्र की समस्याओं को अपने नाट्य - रचनाओं में उतारकर समाज की विसंगति को मुखरित किया है।

प्राचीन काल से ही हमारे देश में पितृसत्तात्मक व्यवस्था रही है और इसी कारण समाज के विभिन्न क्षेत्रों पुरुषों का ही आधिपत्य बना रहा है। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, तथा शैक्षिक आदि सभी क्षेत्रों में पुरुषों को ही प्राथमिकता दी जाती है। इन क्षेत्रों में स्त्री की स्थिति दासी तथा दोयम दर्जे की नागरिक की रही है। पुंसवादी समाज में स्त्रियों के साथ असमानता का व्यवहार परिवार से ही प्रारम्भ हो जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

शिक्षा से लेकर हर बात में लड़कों का ही पक्ष लिया जाता है, चाहे लड़का योग्य हो या अयोग्य हो। लड़के द्वारा घृणित कार्य करने पर भी उसकी ही वकालत की जाती है तथा सारी पीड़ा व जिल्लत लड़कियों के हिस्से में आती है। 'सकुबाई' नाटक में आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण जब सकु अपनी आई तथा भाई के साथ अपनी नानी के घर रहती है तब सकु का छोटा मामा उसका बलात्कार करता है। आई को जब यह पता चलता है तो "आई ने यह कह दिया या तो ये... रवि इस घर में रहेगा या हम... लेकिन नानी और बड़े मामा रवि को क्यों निकालने लगे? वो तो उनका ही बेटा था न... आखिर हम लोगों को ही जाना पड़ा..।" बलात्कार जैसे घृणित कृत्य करने पर भी सकु समाज की विसंगति को मुखरित किया है।

* अन्य गद्य विधाएँ : →

आलोचना व निबन्ध की तरह अन्य गद्य विधाओं, जैसे जीवनी, रेखाचित्र - संस्मरण, यात्रा वृत्तान्त, डायरी आदि में भी स्त्रियाँ लगातार रचना में सक्रिय रही हैं, पर विडम्बना है कि इतिहास ग्रन्थों में उनका उल्लेख हाशिये पर ही रहा है। इसलिए इनका मुकम्मल मूल्यांकन होना और इतिहास में दर्ज होना अभी शेष है। स्वतन्त्र्योत्तर जिन विधाओं का सर्वाधिक विकास हुआ वह जीवनी संस्मरण और यात्रा वृत्तान्त विधाएँ है।

जीवनी :—>

हिंदी में ज्यादातर जीवनियाँ साहित्यकारों की उनके पारिवारिक सदस्यों ने ही लिखी है, इसलिए इन जीवनियों की प्रमाणिकता को लेकर सन्देह प्रायः नहीं होता। शिवरानी प्रेमचन्द ने सन् 1956 में प्रेमचन्द के जीवन को आधार बना कर प्रेमचन्द घर में लिखी। अट्ठासी उपशीर्षकों में विभक्त इस जीवनी में प्रेमचन्द के संघर्षमय जीवन को प्रस्तुत किया गया। शिवरानी ने अपने और प्रेमचन्द के बीच के व्यक्तिगत मतभेदों को भी उन्होंने जीवन का हिस्सा बनाया है।

यात्रा - वृतान्त :-

स्वातन्त्र्योतर यात्रा - वृतान्तों का आरम्भ में सत्यवती मलिक के कश्मीर पर लिखे वृतान्त कश्मीर की सैर नाम से होता है उन्होंने सन् 1950 में कश्मीर से एक यात्रा वर्णन लिखा। जिसमें उन्होंने कश्मीर के सौन्दर्य का वर्णन बड़ी भावुकता के साथ किया है। सन् 1960-70 के आस-पास हिंदी में रूप से सम्बन्धित यात्रा-वृतान्तों का बोल-बाला रहा। इसी समय लक्ष्मी देवी चूडावत ने हिन्दकुश के उस पार (1966) तथा दुर्गावती सिंह ने सौंधी सादी यादें (सन् 1976) लिखी।

रेखाचित्र - संस्मरण :-

हिंदी में स्त्री रचनाकारों के रेखाचित्र संस्मरण लेखक का प्रारम्भ आजादी से पूर्व महादेवी वर्मा के चलचित्र (सन 1941) के साथ ही प्रारम्भ हो गया था। स्वातन्त्र्योत्तर भी यह सिलसिला महादेवी की स्मृति की रेखाएँ (सन 1941) के साथ ही प्रारम्भ हो गया था। पथ के साथी (सन् 1956) स्मारिका (सन् 1971)

मेरा परिचय (सन् 1972) से विकसित हुआ, महादेवी ने इस संस्मरणात्मक रेखाचित्रों की बड़ी विशेषता है कि यह 'समाज के केंद्र' हैं।

निष्कर्ष :—>

इस तरह आलोचना से लेकर अन्य गद्य विधा तक स्त्री रचनात्मकता की एक लम्बी फेहरिस्त है जो इतिहास में अपनी जगह तलाश रही है। और अपनी रचनात्मकता से ब्लैंट नरिटव वाले इतिहास को चुनौती दे रही है। ताकि भविष्य में लिखे जाने वाले इतिहास में वह वंचित न हो सके। वस्तुतः लेखक विधा लिखने नहीं बैठता अपनी बात कहना चाहता है। अपने अनुभव, अपनी पीड़ा, मूल्यों की टकराहट, संक्रमण और परिवर्तन के अपने शब्दों में बाँधना चाहता है। यथार्थ के विविध रूपों को अपनी संवेदना से रिक्त कर पाठकों तक सम्प्रेषित करना चाहता है।

Page No.
Date.

स्त्री उपन्यास लेखन : प्रारम्भिक प्रवृत्तियों और काल - विभाजन :—

प्रामणिक ढंग से हालाँकि यह कहना कठीन है कि स्त्रियों द्वारा उपन्यास लेखन की शुरुआत कहाँ से हुई, लेकिन इतना तय है कि उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशक से लेकर प्रेमचन्द-युग तक साध्वी सती प्राण अबला, श्रीमती हरदेवी, प्रियम्वदा देवी, यशोदा देवी, कुमुदबाला देवी, गिरिजा देवी आदि-आदि लेखिकाओं की औपन्यासिक कृतियाँ प्रकाशित हुई।

सन् 1960 तक रचित उपन्यास

सन् 1961 से सन् 1974 तक रचित उपन्यास

सन् 1975 से सन् 1993 तक रचित उपन्यास

सन् 1994 से अब तक

स्त्री उपन्यास लेखन के सरोकार और वैशिष्ट्य : सन् 1960 से सन् 1974 तक

सन् 1960 से सन् 1974 तक का कालखण्ड मुख्य रूप से चार उपन्यासकारों की कृतियों के इर्द-गिर्द घूमता है। ये हैं उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी और ममता कालिया। पहली बार इन रचनाकारों ने पुरुष की छाया से मुक्त उषा प्रियंवदा कर अपने को देखने का जतन किया है। पुरुष की पसन्द और परम्परा के जवाब उनके भीतर भी एक दिल धड़कता है, एक मस्तिष्क है जो बहुत सी वर्जनाओं को अस्वीकार कर स्वयं जीवन का कर्ता बन जाना चाहता है। यह स्थिति अनिवार्यतः द्वंद्वात्मक टकराहट का प्रस्थान बिन्दु बनती है। पहली टकराहट स्वयं अपने आप से है।